बिहार : एक सुषासन मॉडल का अध्ययन

राम प्रवेष आजाद

राजनीति विज्ञान विभाग,
बी0 पी0 एस0 कॉलेज, देसरी, वैशाली (बिहार)

बिहार उन महत्वपूर्ण राज्यों में से एक है जो भारतीय राजनीति को सर्वथा प्रभावित करते है। जयप्रकाश नारायण का यह सम्पूर्ण आंदोलन बिहार से ही शुरू हुआ था, जिसने 1974 में इंदिरा गॉधी को सत्ता से बेदखल कर दिया था। लेकिन इसके साथ ही साथ विडम्बना तो यह भी है कि बिहार पिछले 200 सालों से अविकसित राज्य रहा है। अंग्रेजी राज के दौरान परमानेंट सेटलमेंट के बाद से ही बिहार में सांस्थिक ढ़ाचा कमजोर होने लगा। 1857 के बाद बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में पूंजी निवेश अन्य राज्यों से कम हुआ है 1920 में अंग्रेजी राज में सर गणेश दत्त की ओर से दी गई रिपोर्ट को देखा जा सकता है। तब भी केन्द्रीय निवेश का रोना या आज भी रोना है। आजादी के बाद भी यह सिलसिला जारी रहा–आधारभूत संरचना हो अथवा सड़क, बिजली और रेलवे विभिन्न राज्यों से तुलना कर यह बताया गया है कि बिहार में प्रति व्यक्ति निवेश देश में न्यूनतम है और राष्ट्रीय औसत का आधार केन्द्र सरकार से मिलने वाले संसाधन के मामले में बिहार के साथ अन्याय होता रहा है। उस पर बाढ़ की समस्या, बढ़ती आबादी और कम केन्द्रीय निवेश आदि के कारण बिहार पिछड़ता चला गया। ऐसे में ही सुशासन अथवा गुड गवर्नेस की बात आती है। जो लोग 2005 के पहले तक बिहार को एक 'गौन केस' यानी नहीं सुधरने वाला राज्य मानते थे वे भी अब इसे 'अंधकार का क्षेत्र' नहीं मानते। आठ वर्षो के अपने शासनकाल में नीतीश कुमार ने विकास एवं सुशासन को मुद्दा बनाकर बिहार के एजेंडे को बदल दिया। नकारात्मक विकास दर से उठकर राष्ट्रीय औसत से भी ऊपर चले जाने के कारण बिहार में खुशी देखी जा रही है। इसके पहले मार्च 1990 में लालू प्रसाद यादव को प्रचंड बहुमत मिला था और उन्होंने बिहार में 15 वर्षो तक शासन किया। लालू यादव को राज्य के मुखिया का पद तब मिला जब सामाजिक न्याय का मुद्दा उबल रहा था। इसका पूरा लाभ उठाते हुए उन्होंने सामाजिक न्याय की शक्तियों को अभूतपूर्व स्तर पर मजबूत किया। समाज की हर बुराई के लिए जाति को एकमात्र कारक मानकर उन्होंने जातीय व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया और विकास को अपने एजेंडे से दूर कर दिया। सार्वजनिक भाषणों में उन्होंने जीवनरेखा मानी जाने वाली बिजली एवं सड़क को आमलोगों के लिए गैरजरूरी बताते हुए उसे सामंतो के लिए उपयोगी बताया। ऐसा कहकर वे दलित–पिछड़ों की मनोवैज्ञानिक भूख को तृप्त कर पाए, परन्तु वह भूल गए कि मनुष्य की भौतिक जरूरतों को पूरा करना भी अनिवार्य है, जिसके लिए जरूरी है विकास। विकास के अभाव में राज्य पटरी से उतर गया और अपहरण उद्योग बेलौंस फैलने लगा, जिसे लालू प्रसाद ने सामाजिक संतुलन बताया।

लालू के समर्थक विकास संबंधी मामलों में राज्य की दयनीय स्थिति को लालू–राबड़ी की देन मानने से इनकार करते है। सामान्य तौर पर यह तर्क सामने आता है कि विकास की सारी समस्याएँ पूर्ववर्ती कांग्रेस–सरकारों की गलतियों और वित्तीय अनियमितताओं की देन है। लालू पर विकास न करने का आरोप स्वर्णवादी मानसिकता वाले लोगों के दिमाग की उपज है, जो पिछड़ों के उभार से घबराए हुए हैं। इस तरह के तर्क में थोड़ी सच्चाई हो सकती है। निष्चित रूप से बिहार में लालू के उभार से पहले ही राजनीतिज्ञों ने विकास की चिंता की उपेक्षा शुरू कर दी थी। साथ ही, बिहार में वित्तीय अनुशासनहीनता कांग्रेसी शासन के दौर में ही शुरू हुई। इस तर्क में भी कुछ दम है कि सामान्यतः सवर्णवादी मानसिकता के लोग बिहार की हर समस्या का कारण लालू को मानते हैं। निश्चित रूप से ऐसा मानना गलत है। लेकिन नब्बे के दशक में विकास के संदर्भ में बिहार की दयनीय स्थिति की जिम्मेदारी से लालू बच नहीं सकते। लालू और राबड़ी देवी की सरकारों ने इस संदर्भ में दो महत्त्वपूर्ण काम किए।

1. लालू–राबड़ी काल में विकास की उपेक्षा और वित्तीय अनुशासनहीनता की पूर्ववर्ती कांग्रेस सरकारों की प्रवृत्तियॉ बहुत गहरी हो गई।

2. लालू–राबड़ी ने खुलकर यह कहना शुरू किया कि चुनाव जीतने के लिए विकास की जरूरत नहीं है, चुनाव सिर्फ सामाजिक आधार को मजबूल करके जीते जा सकते हैं। निश्चित रूप से इस तरह की बातें गरीबी की मार झेलते और जीविका के लिए संधर्ष करते लोगों की जरूरतों की उपेक्षा और इनकी दुखद स्थिति के उपहास का प्रतीक थी।

मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने जब 2005 में बिहार की सत्ता संभाली थी तो उनका एजेंडा था–न्याय के साथ विकास। अपने आठ वर्षो के शासनकाल के दौरान उन्होंने सिद्ध कर दिया कि जनता विकास और सुरक्षा चाहती है, मजहबी अथवा जातीय नारे नहीं। विगत आठ वर्षो में बिहार में कई सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। विधि–व्यवस्था में व्यापक सुधार हुआ है। अपहरण एवं हत्या की घटनाएँ बंद न भी हुई तो उसमें भारी कमी आई है और अपराधी पकड़े जाते रहे हैं। इस क्षेत्र में सुधार के कारण भय का माहौल समाप्त हुआ और कई तरह की आर्थिक गतिविधियॉ बढ़ी। लोग देर रात भी सड़क पर रहते हैं। बिहार में बड़े–बड़े मॉल खुल रहे हैं। जमीन की कीमत आसमान छू रही है। निजी प्रयासों से छोटे–मोटे उद्योग भी खुल रहे हैं। इसके साथ ही नीतीश कुमार ने कई तरह के विकास कार्यो की शुरूआत की। स्कूल जाने वाली लड़कियॉ को साईकिल बांटने की उनकी योजना एक 'मौन क्रांति' को जन्म दे रही है जो महिलाओं को शिक्षित एवं सशक्त बनाएगी। पंचायतों व स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत सीटों का आरक्षण जैसे सोशल इंजीनियरिंग के काम को उन्होंने पूरा किया। शिक्षा, स्वास्थ्य सेवा और सड़कों में भी काफी सुधार हुआ है। कृषि के क्षेत्र में जो काम नीतीश सरकार ने किए, उसका प्रचार तो बहुत कम हुआ, ऊपज और उत्पादकता दोनों बढ़े। पहले के वर्षो के मुकाबले खेती की ऊपज में करीब 15 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इसका असर पूरी अर्थव्यवस्था पर पड़ा है।

बिहार सरकार ने पिछले आठ वर्षो में आंतरिक संसाधनों को बढ़ाकर करीब दोगुना कर दिया है। विकास योजनाओं का आकार काफी बढ़ा है। सन् 2003–04 वित्तीय वर्ष में बिहार में विकास योजनाओं पर जहॉ 2207 करोड़ रूपये खर्च हुए, वहॉ सन् 2009–10 वित्तीय वर्ष में वह खर्च बढ़कर 12 हजार 511 करोड़ रूपये हो गया। यह सच है कि इसमें से कुछ राशि भ्रष्टाचार में जा रही है, पर काफी राशि जमीन पर लग रही है और इसलिए राज्य भर में विकास कार्य दिखाई भी पड़ रहे हैं। बिहार सरकार ने मार्च 2009 में राज्य विधानमंडल से बिहार विशेष अदालत विधेयक 2009 पास करवाकर केन्द्र करकार को राष्ट्रपति की मंजूरी के लिए भेज दिया। आज तक उस पर राष्ट्रपति की सहमति नहीं मिल पायी है। नीतीश कुमार का मानना है कि उस विधेयक के कानून का रूप ग्रहण कर लेने के बाद विकास और कल्याण के अधिकांश पैसे आम लोगों तक पहुॅचाने में उन्हें सुविधा होगी।

बिहार में लालू–राबड़ी शासन के दौरान हजारों गांवों को जोड़ने वाली चकाचक सड़कें नहीं बन पा रही थी। लेकिन नीतीश कुमार ने सत्ता में आने के उपरांत इसमें गति आने की संभावना देखी जाने लगी। लेकिन तथ्यगत आंकड़े यह दर्शाते है कि गांवो को जोड़ने के लिए भारत निर्माण योजना के तहत बिहार में बनने वाली सड़कों पर धीमी गति की मार है। योजना आयोग की एक टीम ने समीक्षा के दौरान पाया कि गांवों को जोड़ने के लिए बनने वाली सड़को की योजनाएं लक्ष्य से काफी पीछे चल रही है। बिहार में 2005–09 के बीच 9956 गांवों को सड़क से जोड़ना था। बताया जाता है कि अब तक 2199 गांवों को सड़को से जोड़ने का काम पूरा हो सका है। बिहार सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण में बताया गया है कि पिछले वित्तीय वर्ष में भी पटना ही खर्च के मामले में अव्वल था। पटना और बिहार के शेष जिलों के बीच 2007–08 में प्रति व्यक्ति व्यय के मामले में भी काफी असमानताएं थी। जहां पटना के लिए प्रति व्यक्ति व्यय 29390 रूपये था, वहीं अरवल में सबसे कम 1370 रूपये था। शेष अन्य जिलों में सबसे अधिक 3469 रूपये मुंगेर जिले का था। अर्थात् राज्य के कुल शेष 36 जिलों में व्यय 3469 से नीचे है। ये आंकड़े यह बताने के लिए काफी है कि पिछड़े बिहार में हम किस तरह के द्वीप बना रहे हैं।

आजादी के बाद बिहार से बाहर जाने वाले लोगों की संख्या कम नहीं हुई। 1951 के सेंसस रिपोर्ट के अनुसार बिहार से कुल 61084 श्रमिक बाहर गये। पटना डिविजन से 6502 तिरहुत से 14572, भागलपुर से 946

लोग और छोटानागपुर से भी बड़ी संख्या में लोग अन्य राज्यों में गये थे। अस्सी और नब्बे के दशक में बिहार से बाहर जाने वाले श्रमिकों की तादाद 11 लाख पहुंची। 1981 में जहां बाहर जाने वाले श्रमिकों की संख्या 11. 08 लाख थी। 1991 में घट कर 10.50 लाख हो गई। लेकिन 2001 में उनकी संख्या पुनः 55 लाख हो गई है।

बिहार के संदर्भ में सबसे मुश्किल सवाल इसके पिछड़ेपन और अविकास से जुड़ा हुआ है। सन् 2000 में झारखंड के अलग हो जाने के बाद बिहार की हालत और दयनीय हो गई। इसका कारण यह है कि झारखंड में खनिज पदार्थों से युक्त सभी क्षेत्र चले गए। वर्तमान बिहार सिर्फ खनिज पदार्थों के संदर्भ में ही हीन नहीं हैं, बल्कि यह बाढ़ और सुखा से ग्रस्त प्रदेश बन गया है। हर साल उत्तर–बिहार भयंकर बाढ़ की चपेट में होता है, जबकि दक्षिण–बिहार में सूखे का प्रकोप होता हैं। राज्य की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यहॉ भूमि–संबंध बहुत ही असमान हैं। जमीन कुछ निश्चित जातियों के सम्पन्न लोगों के हाथों में सिमटी हुई है। राज्य में ऐसे उद्योगों का भी अभाव है, जिनसे युवाओं को रोजगार मिल सके।

प्रणव वर्द्धन ने अंतराष्ट्रीय संदर्भ में विचार करते हुए आर्थिक विकास के लिए कुछ पूर्व शर्तो का उल्लेख किया है –

भूमिहीन होने और जीवन के दूसरे क्षेत्रों में पिछड़े होने के कारण बिहार में निम्न पिछड़ी जातियों और दलितों की स्थिति इतनी बुरी रही है कि कई बार बहुत से भूमिहीन भूमिपतियों के यहॉ लगभग बेगार मजदूर के रूप में काम करते हैं। हॉ, यह जरूर हुआ कि नब्बे के दशक में हाशिए पर पड़े समूह पहले की भॉति भूमिपतियों का शोषण सहने के लिए तैयार नहीं है। लालू के शासन में हाशिए पर पड़े समूहों के अंदर आत्म–विश्वास और आत्म–सम्मान की भावना जगी। यह भी एक रूप में विकास की दिशा में कदम है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। इसके लिए यह जरूरी है कि लोगों के पास कम से कम इतने बुनियादी आर्थिक संसाधन हो कि वे सामंतवाद के प्रतिरूप भूमिपतियों के चंगुल में न फॅसे रहें।

बिहार के विकास के संदर्भ में कुछ बुनियादी कदम उठाए जाने की जरूरत है –

जाति की राजनीति को पूरी तरह से खत्म करने का विचार एक यूटोपियाई ख्याल है। जाति भारत मे राजनीति के सर्वप्रमुख आधारों में से एक है। बिहार की राजनीति से यह आधार ज्यादा मजबुती से जुड़ा हुआ है। एक स्तर पर इसके यथास्थितिवादी और समाज विभाजक होने का खतरा भी है। बिहार की राजनीति में संकेत स्पष्ट रूप से मिलता है। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि यह खतरा हर राजनीतिक व्यवस्था में है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

[1] के0 सी0 यादव, लालू प्रसाद यादव और बदलते भारत का अंतविरोध, होप इंडिया, गुड़गांव, 2003.

[2] आर्थिक सर्वेक्षण, बिहार सरकार, पटना, 2007–08.

[3] श्रीकांत, 'सामाजिक परिवर्तन का इतिहास चक्र' सामयिक वार्ता, जून, 2005. पृ0–49.

[4] तेंदूलकर समिति रिपोर्ट.

[5] श्रीकांत, राज और समाज, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृ0 36–49.